Peer Reviewed Referred and
UGC Listed Journal No. 47026

ISSN 2319 - 359X

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY
HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

IDEAL

Single Blind Review /
Double Blind Review

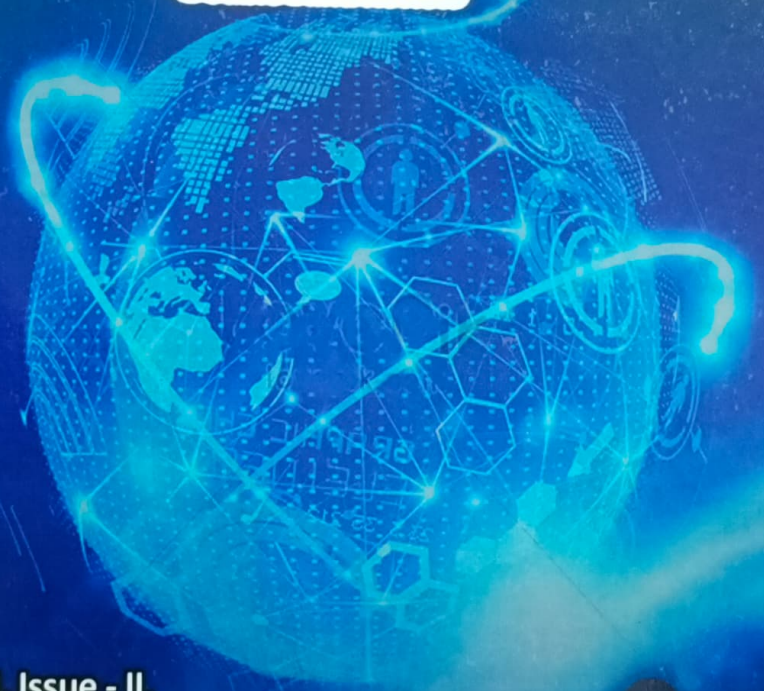

Volume - XII, Issue - II,
March - August - 2024
Marathi Part - I / Hindi Part - III

Impact Factor / Indexing
2023 - 7.537
www.sjifactor.com

Ajanta Prakashan

Prof. Nagesh Dubey

ISSN 2319 - 359X
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY
HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

IDEAL

Volume - XII Issue - II March - August - 2024

MARATHI PART - I / HINDI PART - III

Peer Reviewed Referred and
UGC Listed Journal No. 47026

Single Blind Review/Double Blind Review

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

Sagar
M.P.

IMPACT FACTOR / INDEXING
2023 - 7.537
www.sjifactor.com

❖ EDITOR ❖

Assit. Prof. Vinay Shankarrao Hatole
M.Sc (Math's), M.B.A. (Mkt), M.B.A (H.R),
M.Drama (Acting), M.Drama (Prod & Dirt), M.Ed.

Prof. Nagesh Dubey
Head
Deptt. of A.I.H.C.A.

❖ PUBLISHED BY ❖

Ajanta Prakashan
Aurangabad. (M.S.)

CONTENTS OF HINDI PART - III

अ.क्र.	लेख और लेखक के नाम	पृष्ठ क्र.
१	भारतीय श्रमण संस्कृति मे वर्णित अर्थ और शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता **डॉ. ज्योति बाबू जैन**	१-६
२	ग्रामीण समाज में पशुधन की भूमिका **हरि प्रसाद यादव**	७-१२
३	कौटिल्य के आर्थिक विचारों की वर्तमान युग में प्रासंगिकता **डॉ. कृतिकाकुमारी सुरेशभाई चौधरी**	१३-१७
४	आधुनिक संस्कृत साहित्य में अर्थ का महत्व **दिपाली बाहादुर**	१८-२०
५	कार्यशील श्रम महिलाएँ : जनांकिकीय, आर्थिक दशा एवं स्वास्थ्य स्थिति **Dr. Amba Lal Katara**	२१-२६
६	भीष्म साहनी की काहनियों में मानवीय बोध **डॉ. चंद्र रेखा शर्मा**	२७-३१
७	प्राचीन भारत में राजस्थान की जनजातीय महिलाओं की आर्थिक स्थिति **माया सेन**	३२-३६
८	प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था की लोक कल्याण अवधारणा की प्रासंगिकता **प्रो. नागेश दुबे**	३७-४२
९	भारतीय सनातन धार्मिक परम्परा में मंदिर आधारित अर्थव्यवस्था **दीपिका दीक्षित**	४३-४६
१०	प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में आयुर्वेद औषधि उद्योगों की भूमिका **निशा साकेत** **डॉ. कमर इजहार**	४७-४९
११	प्राचीन भारत में पर्यावरण दर्शन **प्रियंका श्रीवास्तव** **डॉ. अंकिता गुप्ता**	५०-५४
१२	ग्रंथालय पर सोशल मीडिया का प्रभाव **डॉ. दीप्ती लोदवाल**	५५-५७
१३	कौटिल्य के आर्थिक विचारों की वर्तमान समय मे उपयोगिता: एक अध्ययन **डॉ. गरिमा द्विवेदी**	५८-६१

८. प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था की लोक कल्याण अवधारणा की प्रासंगिकता

प्रो. नागेश दुबे
विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ. हरीसिंग गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर. (म.प्र.)

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था को एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था माना जाता है। नियमित कर–व्यवस्था, एक पूर्ण विकसित कृषि–प्रधान समाज का ही लक्षण है। प्राचीन भारत में उत्पादन और श्रम के सम्यक परीक्षाणोपरान्त करारोपण किये जाने का युक्ति युक्त और वैज्ञानिक आधार अपनाया गया था। प्राचीन भारत में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों कर प्रचलित थे। प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष करों के मिश्रण से ही कर व्यवस्था में लचीलापन आया। यद्यपि अधिक बल प्रत्यक्ष करों पर ही दिया गया था।[1] आधुनिक अर्थशास्त्री भी करों के स्वरूप को लचीलेपन के तत्व को महत्वपूर्ण मानते हैं। वास्तव में समाज में राजनीतिक स्थिरता आती है तभी उसका द्रुतगति से विकास सम्भव होता है। आर्थिक स्थिरता ही आर्थिक विकास की अनिवार्य शर्त होती है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय कराधान व्यवस्था एक योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का परिचय देती है। **सेलिगमेन** के अनुसार, "सरकार सार्वजनिक हित के लिए जो व्यय करती है उसे पूरा करने के लिए व्यक्तियों से अनिवार्य रूप से जो धन प्राप्त करती है, वह कर है।"[2] **न्यूमेन** के अनुसार, "कर वह अनिवार्य भुगतान है, जो सरकार को सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। मेधातिथि ने कर को वस्तुओं के अर्पण के रूप में परिभाषित किया है।"[3]

प्राचीन काल में व्यक्तियों का व्यय, उनकी जरूरतें और देशकाल को दृष्टिगत रखते हुए करारोपण किया जाता था, जिसे सामाजिक सुविधा का सिद्धांत कहा जा सकता है। मूलभाव यही था कि जो व्यक्ति कर चुकाने में असमर्थ हो उसे धन के रूप में कर देने की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। इसी तरह उद्योगों पर उत्पादन श्रम और लाभ आदि को दृष्टि में रखकर कर लगाने की वकालत की गई थी। कर निर्धारण से पूर्व प्रचलित मूल्य, मांग और पूर्ति तथा उत्पादन व्यय आदि अनेक तथ्यों पर विचार किया जाता था। प्राचीन भारतीय साहित्य मनुस्मृति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीति तथा महाभारत से ज्ञात होता कि कर–वृद्धि धीरे–धीरे की जानी चाहिए ताकि न कराभाव में कोष क्षीण हो और न ही कराधिक्य से जनता में उद्वेग पैदा हो। प्राचीन भारत में कराधान के सिद्धांत विवेकपूर्ण तो थे ही वे आर्थिक और नैतिक भी थे। आर्थिक इसलिए कि उनका आधार अर्थ सामर्थ्य था और नैतिक इसलिए कि वे प्रत्यक्षतः न्याय से जुड़े हुए थे।[4]

प्राचीन भारत में प्रचलित कराधान प्रणाली का अध्ययन व उसका अनुपालन आज भी प्रासंगिक है। अल्तेकर के अनुसार "कर व्यवस्था के संबंध में प्राचीन व्यवस्थाकारों ने जो प्रावधान प्रतिपादित किये हैं, उनसे श्रेष्ठ और दोष–रहित दूसरे शायद ही हों।" ये प्रावधान आधुनिक युग में भी उतने ही उपयुक्त हैं, जितने कि प्राचीन युग में थे। प्राचीन भारत में कराधान के प्रावधानों का उद्देश्य मात्र आय प्राप्त करना नहीं था, वरन् उनका उद्देश्य धन–वितरण की असमानता को कम करके देश के आर्थिक विकास को उत्तरोत्तर बढ़ाना भी था। बृहस्पति स्मृति के

अनुसार कर– निर्धारण का पहला और आखिरी उद्देश्य लोक–हित है। प्राचीन भारत में कराधान के प्रावधान, मात्र कोष या उसे भरने के लिए ही नहीं होते थे, बल्कि कर–औचित्य और उसकी युक्तियुक्ता पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था।

महाभारत में अनेक स्थलों पर कर–व्यवस्था की अत्यन्त सारगर्भित विवेचना की गयी है। मनु, नारद, विष्णु, याज्ञवल्क्य, गौतम आदि स्मृतिकारों ने आर्थिक मत प्रावधानों को प्रतिपादित कर, न केवल शासन बल्कि समूचे समाज की उन्नति हेतु उल्लेखनीय कार्य किया। कोष की सुदृढ़ता को प्राचीन भारतीय विचारकों ने महत्त्वपूर्ण माना है। प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि था। भू–राजस्व, राज्य के कोष का प्रमुख आधार था। ऐसी मान्यता थी कि राज्य के द्वारा कृषि–अर्थव्यवस्था का विस्तार होने पर, नियमित कराधान से राजस्व में भी सुनिश्चित वृद्धि होगी।

प्राचीन भारतीय साहित्य और पुरालेखों में राज्य के अस्तित्व के जिन सात अंगों का उल्लेख है उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान, कर संग्रह कर 'कोष' को सुदृढ़ करने को दिया गया है। कामन्दक के अनुसार ''कोष के क्षीण होने पर राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।''[5] कौटिल्य के अनुसार संसार में अर्थ ही प्रधान है। उसने राजा को, कोष वृद्धि का प्रयास करने और कोष–संग्रह करने का परामर्श दिया है। महाभारत में भीष्म कहते हैं कि ''कोष ही राजाओं का मूल और उनकी वृद्धि का हेतु होता है। राजा को कोष की वृद्धि करनी चाहिए।'' शुक्रनीतिसार के अनुसार राजा को चाहिए कि वह सेना, प्रजा और यज्ञ के निमित्त कोष का संग्रह करें।

प्राचीन भारतीय कर–व्यवस्था को एक प्रगतिशील व्यवस्था माना जा सकता है। कार्य करने की योग्यता रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर कराधान का प्रावधान था, जो न तो नकद में कर दे सकते थे और न ही अन्य रूप में, उन पर भी श्रम–कर लगाया जाता था, जो अनिवार्य था। इस व्यवस्था ने आलसी और निकम्मे व्यक्तियों की संख्या में कमी करके, सामाजिक बोझ काफी हद तक कम कर दिया था। कराधान में बल, इस बात पर भी दिया गया था कि कराधान केवल सम्पत्ति और आय पर ही न किया जाये अपितु वह व्यक्ति पर भी हो।[6]

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में आये शब्द यथा–बलि, भाग, कर, शुल्क, प्रतिकर, विशिष्ट, प्रतिभाग, हिरण्य रज्जू, विवात, सेनाभक्त, पार्श्व आदि भूमि से प्राप्त होने वाली आय पर लिये जाने वाले कर की ओर संकेत करते हैं। अर्थशास्त्र, महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रंथों में 'षड्भाग', 'षड्भागम' अथवा 'षड्भागिन' जैसे शब्दों से यही दर्शित होता है कि राजा को उपज से नियमित आय होने लगी थी जो, उपज का प्रायः षष्ठांश थी। महाजनपदयुग में हुई व्यापार और व्यवसाय की उन्नति के फलस्वरूप कर–प्रणाली भी विकसित हुई।

प्राचीन भारतीय कर–व्यवस्था उन परम्परागत मतों पर आधारित थी जो धर्म शास्त्रकारों द्वारा धर्मशास्त्रों में एकत्रित किए गए थे। प्राचीन भारत में कराधान संबंधी के अनेक मत, शैलियां एवं विधियां विकसित हुईं। महाभारत के अनुसार कर, विधि सम्मत होने चाहिए, विधि–विरूद्ध नहीं।[7]

प्राचीन भारत में तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक शासन–प्रणाली का एक मुख्य कार्य दक्षता के साथ कर–संग्रह करना था। राजा, दण्ड नीति और धर्म के अधीन था, अतएव कर–व्यवस्था भी दण्डनीति शास्त्र और धर्मशास्त्र द्वारा प्रतिपादित नियमों के ही अंतर्गत थी। कराधान संबंधी मत, वस्तुतः राजा की असीमित सत्ता को संतुलित करते थे। महाभारत में कहा गया है कि जो राजा ऐसे करों द्वारा प्रजा को पीड़ित करता है जो शास्त्रोचित

नहीं है, वह अपना विनाश स्वयं कर लेता है।[8] शुक्रनीतिसार के अनुसार जो राजा नीति का परित्याग करके, प्रजापीड़न द्वारा धन प्राप्त करता है उसका राज्य शत्रु के वश में चल जाता है।[9] इस तरह प्राचीन भारत में कर–निर्धारण में न्याय सिद्धांतों को प्राथमिकता प्रदान की गई थी और देशकाल तथा परिस्थिति के अनुकूल कराधान किया जाता था। महाभारत के अनुसार कराधान के समय राजा हमेशा प्रजाहित (लोक कल्याण) को सर्वोपरि रखता था।[10]

प्राचीन भारत में कराधान व्यवस्था प्रणाली ने एक संस्थागत रूप ले लिया था प्राचीन शास्त्रकारों ने आधुनिक अर्थशास्त्रियों की तरह ही करों की लोच–बेलोच तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों का प्रावधान किया था।

मौर्यकालीन कराधान व्यवस्था और आधुनिक भारतीय कराधान व्यवस्था में बहुत समानताएँ हैं। कौटिल्य की राजस्व पद्धति को अंग्रेजों ने भारत में अपनाया था उसे परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में जिस कर–व्यवस्था का वर्णन मिलता है उसका प्रभाव वर्तमान कर व्यवस्था में स्पष्टतया देखा जा सकता है।[11]

प्राचीन भारतीय कराधान संबंधी मतों का प्रभाव वर्तमान सुधारात्मक कराधान संबंधी मतों पर अनेक स्वरूपों में परिलक्षित होता है। कौटिल्य के आर्थिक विचारों को हम आधुनिक अर्थशास्त्र का मूल स्त्रोत मान सकते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्री जिनमें मार्शल और पीगू प्रमुख हैं के मत, कौटिल्य से काफी हद तक मिलते हैं।[12]

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार शासकीय राजस्व मुख्यतः करों से प्राप्त होता है। शुल्क, राज्य नियंत्रित उद्योगों में निर्मित सामग्री की बिक्री से प्राप्त राजस्व, जुर्माना और हर्जाना तथा उपहार आदि से भी राज्य को आय होती है। कौटिल्य ने भी स्त्रोत, प्रकृति और स्वरूप तथा राजस्व के अंतर्गत इन्हें सम्मिलित किया था। कामन्दक नीतिसार में कृषि, वाणिज्यिक यातायात को सुविधाजनक बनाने वाले संचार साधन, दुर्ग की खाईबन्दी, नदियों पर बाँधों का निर्माण, वृक्षों की लकड़ी की बिक्री, खनिज कार्य तथा नये इलाकों में बसाहट आदि मदों को उल्लिखित किया है। सभी मदों को आधुनिक शब्दावली में भू–राजस्व, सीमाशुल्क, आबकारी शुल्क, बिक्रीकर, यात्री कर, पथकर, नगरीय कर, सिंचाई कर, जलकर मवेशियों पर कर व उत्पादों पर कर आदि रूपों में स्थान दिया गया है।[13]

प्रगतिशील कर–पद्धति की व्याख्या कामन्दक ने प्रस्तुत की थी। कामन्दक के अनुसार शूद्र, शिल्पकार, वैश्य, धार्मिक, तथा धनी व्यक्तियों आदि सभी को राष्ट्र के लिए अपने उत्पादन का कुछ भाग देना चाहिए।[14] एडम स्मिथ का समानता संबंधी मत, उक्त वर्णित प्राचीन कराधान पद्धति पर ही आधारित है, क्योंकि कराधान का समानता या समता संबंधी मत के अनुसार भी प्रजा को अपनी सामर्थ्य के अनुपात में अर्थात् राज्य के संरक्षण में, उसके द्वारा उपभोग किये गये राजस्व के अनुपात में अंशदान करना चाहिये।

मनुस्मृति के अनुसार सामाजिक परिस्थितियों को भलीभांति समझ कर राजा को चाहिए कि वह कराधान की प्रक्रिया को निश्चितता प्रदान करें।[15] एडम स्मिथ के निश्चितता संबंधी मत के अनुसार भी कर राशि, भुगतान अवधि तथा प्रक्रिया निश्चित (निर्धारित) होनी चाहिए। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा को अत्यधिक कराधान कर के न तो अपनी जड़ें काटना चाहिए और न हीं अत्यधिक लालच के वश में आकर अपनी ही प्रजा को कष्ट देना चाहिए।[16] बृहस्पतिस्मृति में भी धीरे–धीरे कर वृद्धि को उचित माना गया है। एडमस्मिथ का सुविधा संबंधी मत भी मनु तथा बृहस्पति के मत के आधार पर प्रतिपादित किया गया है जिसके अनुसार प्रत्येक कर ऐसे समय पर अथवा इस ढंग से लगाया जाना चाहिए कि वह करदाता को सुविधाजनक हो। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा को सूक्ष्म से सूक्ष्म

रूप में कर, ग्रहण करना चाहिए।[17] एडम स्मिथ का मितव्ययिता संबंधी मत भी मनु अनुसार ही है। इस मत के अनुसार कराधान इस प्रकार किया जाये कि व्यक्तियों के पास से कम से कम धन निकले तथा करों की वसूली पर होने वाले व्यय में मितव्ययिता होनी चाहिए। मनुस्मृति में कहा गया है कि यातायात की दूरी, वस्तु का सुरक्षा खर्च, मांग, व्यय, आवागमन खर्च आदि को ध्यान में रखकर ही कर निर्धारित किया जाना चाहिए।[18] आधुनिक कर–औचित्यता का मत मनुस्मृति के उक्त व्यवस्थानुसार ही है। इस के अनुसार कर–व्यवस्था स्थापित मतों के अनुसार होना चाहिए। अतः स्थापित करों को ही आगामी वर्षों में लगाया जाना चाहिए।

शुक्रनीतिसार में कहा गया है कि जैसे माली छोटे–छोटे फूल चुनता है, कोयला बनाने वाले की भांति वृक्षों की जड़ों को नष्ट नहीं कर डालता, वैसे ही कर लेना चाहिये।[19] आधुनिक न्यूनतम कराधान संबंधी मत भी शुक्रनीतिसार में वर्णित उक्त व्यवस्थानुसार ही है।

बृहस्पतिस्मृति के अनुसार देश स्थिति (वर्षा, उपज और जन्म परिस्थितियाँ), कृषकों के पारस्परिक नियमों तथा मान्यताओं के अनुसार ही कराधान होना चाहिए।[20] करारोपण में कोमलता का वर्तमान मत भी बृहस्पति स्मृति के अनुरूप ही है। बृहस्पति स्मृति के अनुसार ही सेवाजीवी, व्यापारी, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की आय पर कर की दर, पृथक–पृथक होनी चाहिए। कराधान संबंधी समरूपता का वर्तमान मत बृहस्पति स्मृति के अनुरूप ही है। इसके अनुसार करों का भार करदाताओं पर उनकी क्षमताओं के आधार पर एक समान रूप से पड़ना चाहिए।[21] बृहस्पति सूत्र के अनुसार भी कर–निर्धारण का पहला और आखिरी उद्देश्य लोक–हित है। लोकहितकारी राज्य की कल्पना करते हुए वे कहते हैं कि अपनी जाति एवं जीवों को दूषित नहीं करना चाहिए– दूषयेन्न स्वजातिं जीवत्सु।[22]

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में करारोपण में लोक कल्याणकारी भावना विद्यमान थी। लोक कल्याणकारी राज्य की जो अवधारणा भारत के वर्तमान संविधान में प्रमुखता से रखी गयी है। उसकी पृष्ठभूमि मौर्यकाल में भी दिखलायी पड़ती है। राजा, अर्थव्यवस्था के अंतर्गत कराधान से प्राप्त राजस्व का उपभोग लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए करता था। तब भी कराधान प्रणाली न केवल लोककल्याणकारी भावना पर आधारित थी वरन् यह वैज्ञानिक आधार पर भी खरी उतरती थी। मौर्यकाल में वर्तमान वित्तमंत्री की भांति करारोपण की नई योजनाएं लागू करने का अधिकार समाहर्ता नामक अधिकारी को था।

प्राचीन अर्थव्यवस्था में कर–व्यवस्था लोक कल्याण की भावना प्रमुखता से निहित थी। प्राचीन भारत में कराधान और कर–उन्मुक्ति के दो ध्रुवों के मध्य लोक कल्याण की अवधारणा पूर्णरूपेण संतुलित और तर्क पूर्ण थी।[23] वर्तमान कराधान व्यवस्था में भी उक्त प्रावधान का होना नितांत आवश्यक है।

सातवाहन, कुषाण व गुप्तकालीन विशाल साम्राज्यों की अर्थव्यवस्था भी मौर्यो की अर्थव्यवस्था से बहुत अंशों में मिलती जुलती रही होगी और उस समय भी मौर्यकाल के ही समान लोककल्याण के कार्यों में पर्याप्त व्यय किया जाता रहा होगा। प्राचीन भारतीय विचारधारा के अनुसार राजा का मुख्य कार्य सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना भी था। यही कारण है कि प्राचीन भारत में लोककल्याणकारी राज्य के आदर्श आचरण के अनुरूप ही उदाहरण मिलते हैं। उस समय विधि-निर्माण अधिकतर सामाजिक व्यवहार की पुष्टि तक ही सीमित था। अर्थशास्त्र में जनकल्याण के कार्यों को बहुत महत्व दिया गया है। अशोक सब कुछ पितृ–भाव से करता दिखाई पड़ता है और इसीलिए वह अपनी प्रजा से व्यक्तिगत सम्पर्क रखने की प्रबल इच्छा व्यक्त करता है।[24]

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में करारोपण का क्षेत्र केवल वित्त–विज्ञानियों और अर्थशास्त्रियों के लिए ही नहीं था। इस क्षेत्र में समाजविज्ञानी भी बराबरी से सक्रिय थे। प्राचीन भारत में कराधान प्रणाली का अध्ययन जितना आर्थिक प्रसंगतः है, उतना ही वह सामाजिक प्रसंगतः भी है। समाज कल्याण के प्रति भारतीय शासकों की रुचि और उनकी गहरी संवेदनशीलता का परिचय हमें अशोक के उस कथन से भी मिलता जिसमें वह कहता है कि 'सब मनुष्य मेरी सन्तान हैं। आर्थिक जीवन का राज्यद्वारा नियंत्रण और उद्योगों का राष्ट्रीयकरण उस युग की एक अन्य लाक्षणिक विशेषता थी।[25]

प्राचीन भारत में कराधान प्रणाली ने एक संस्थागत रूप ले लिया था और सच तो यह है कि अंग्रेजों ने भी इस देश में कौटिल्य के सिद्धान्तों और उसकी आचार–नीति का प्रयोग किया था। आधुनिक अर्थशास्त्र की शब्दावली में प्रकृति और पुरुष अर्थात भूमि और श्रम को इस धरती पर सृष्टि का आधारभूत घटक माना गया है और यह एक पुरातन भारतीय अवधारणा ही है। प्राचीन भारत में प्रचलित शासन प्रणाली उन आदर्शों के बहुत निकट पहुंची दिखाई देती है।

प्राचीन भारत में कर संग्रह करने वाला अभिकरण केन्द्रीकृत और सुव्यवस्थित था। करों का भुगतान सोना, सिक्कों, मवेशियों, अनाज, कच्चे समान और व्यक्तिगत सेवा के रूप में होता था। करारोपण के बदले संरक्षण के आश्वासन के रूप में सुविधाएं भी दी जाती थी।[26] प्राचीन अर्थव्यवस्था का उद्देश्य यद्यपि वित्तीय लक्ष्यों को पूरा करना था, तथापि इसके लोक कल्याण के ध्येय भी थे और से यह किन्ही विशिष्ट सामाजिक और राजनीतिक सरोकारों को पूरा करती थी। प्राचीन भारत में अर्थव्यवस्था की कराधान प्रणाली का अध्ययन जितना आर्थिक दृष्टि से प्रासंगिक है उतना ही लोक कल्याण की दृष्टि से भी प्रासंगिक है। वर्तमान कर–प्रावधानों में भी प्राचीन कराधान प्रावधानों के अनुरूप ही आर्थिक उद्देश्य के साथ–साथ लोक कल्याण की भावना के संतुलित स्वरूप की नितांत आवश्यकता है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय कराधान व्यवस्था एक योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का परिचय देती है। प्राचीन भारतीय कराधान–व्यवस्था का उद्देश्य सरकार का पोषण करना ही नहीं था, वरन् कराधान से प्राप्त राजस्व से लोक कल्याण से संबंधित कार्यों को भी सम्पादित करना होता था अर्थात् लोक कल्याण की भावना निहित थी। प्राचीन भारतीय कराधान व्यवस्था अपनी प्रकृति और स्वरूप में एक प्रगतिशील व्यवस्था थी।

संदर्भ

1. पाण्डेय, श्रीकान्त, प्राचीन भारत में करारोपण (अप्रकाशित शोध प्रबंध), डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र. 2001, पृ.4.
2. श्रोत्रिय, आलोक एवं मोहनलाल, 'प्राचीन भारत में कर व्यवस्था : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन', भारत में कर सुधार, संपा. डी.के. नेमा, सेमीनार प्रोसीडिंग, सागर, 2009, पृ.5.
3. वही.
4. वही, पृ.7.
5. कामन्दकीय नीतिसारः सर्ग 4 श्लोक 56
6. पाण्डेय, श्रीकांत, पूर्वोल्लिखित, पृ.16
7. महाभारत, शांति पर्व, 88 / 12

8. वही, 71/15
9. शुक्रनीतिसार, 4/8
10. महाभारत, शांति पर्व, 87/16
11. पाणिक्कर, के. एम., भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण, बम्बई, 1957, पृ.28
12. पाण्डेय, श्रीकान्त, पूर्वोल्लिखित, पृ.151
13. वही, पृ.153
14. कामन्दकीय नीतिसार, सर्ग 4 श्लोक– 48–50
15. मनुस्मृति, 7/128
16. वही, 7/139
17. वही, 7/29
18. मनुस्मृति 7/126–127
19. शुक्रनीतिसार 4/33
20. वृहस्पत्ति स्मृति, व्यवहार खण्ड 1/43
21. वही, 7/29
22. बृहस्पति सूत्र, 1/43
23. पाण्डेय, श्रीकांत, पूर्वोल्लिखित, पृ.187
24. वही, पृ.118
25. वही, पृ.188
26. श्रोत्रिय, आलोक एवं मोहनलाल, पूर्वोल्लिखित, पृ.8